स्वामी विवेकानन्द की खेतड़ी यात्राएँ

डॉ. ओंकार सक्सेना

Dashrath Singh Shekhawat

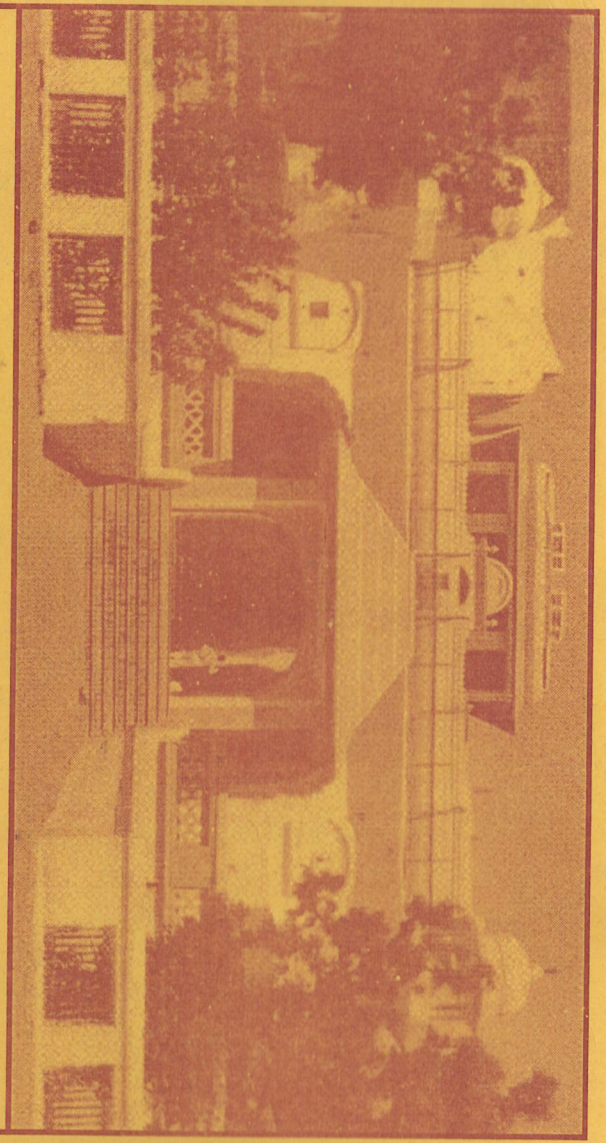

रामकृष्ण विवेकानन्द स्मृति मंदिर, खेतड़ी (राजस्थान)

(राजा अजीतसिंह का महल)

स्वामी विवेकानन्द की खेतड़ी यात्राएँ

डॉ. ओंकार सक्सेना एम.एस.

मेम्बर : मेडिकल काउँन्सिल ऑफ इण्डिया तथा एम.सी. आई रिप्रेजेन्टेटिव ऑन् इण्डियन पार्लियामेन्टरी साइँन्टिफिक कमेटी;

भूतपूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष : शल्य चिकित्सा विभाग तथा प्राचार्य एवं नियन्त्रक सवाई मानसिंह मेडिकल कॉलेज एवं संलग्न अस्पताल समूह;

डीन फेकल्टी ऑफ मेडिसिन एवं फॉर्मास्यूटिकल्स तथा मेम्बर सीनेट एवं सिन्डीकेट, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

रामकृष्ण मिशन

विवेकानन्द स्मृति मन्दिर,

खेतड़ी - 333503 (राजस्थान)

Phone : 01593 - 33312

Dashrath Singh Shekhawat

प्रकाशक :
स्वामी विपाशानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द स्मृति मन्दिर,
खेतड़ी - 333503 (राजस्थान)
Phone : 01593-33312

सौजन्य :
डा. शकुन्तला सक्सेना
कैलाश खंडेलवाल
राममोहन दुसाद

मुद्रक :
श्री सुदर्शन प्रेस
जयपुर-302 004

प्रस्तावना

युगाचार्य स्वामी विवेकानन्दजी की तृतीय खेतड़ी यात्रा के शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में स्वामीजी व उनके शिष्यवर, परम मित्र खेतड़ी नरेश, महाराजा अजीतसिंहजी की सद्‌भाव भरी तीनों यात्राओं की स्मृतियाँ खेतड़ी एवं राजस्थान के सभी निवासियों को आनन्ददायी होंगी। इस विचार से मैंने डॉ. ओंकार सक्सेना जो कि रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा में स्नान करते हैं और अपने श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द प्रसंग के माध्यम से राजस्थान जन-मानस में सुपरिचित हुए हैं, से उपरोक्त विषय पर लिखने का अनुरोध किया था और उन्होंने भी यह सत्कार्य पाठकों के मनोभाव समझते हुए साहित्य की शैली से, रोचक ढ़ंग से लिखकर, उनको पुन: महापुरुषों से प्रेरणा लेकर उच्च आदर्शों को जीवन में उतारकर धन्य होने की प्रेरणा दी है। मैं उन्हें इस कार्य के लिए शुभेच्छा व सह हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। हालांकि उनके लिए सिर्फ इतना पर्याप्त नहीं है।

स्वामी विपाशानन्द
सचिव

रामकृष्ण मिशन,
विवेकानन्द स्मृति मन्दिर,
खेतड़ी (राजस्थान)

Dashrath Singh Shekhawat

राजा अजीतसिंह

खेतड़ी नरेश राजा अजीतसिंह और स्वामी विवेकानन्द परस्पर संपूरक-अनुपूरक थे, इस बात की पुष्टि स्वामीजी द्वारा मुन्शी जगमोहनलाल को अक्टूबर 11, 1897 के लिखे गये पत्र में होती है, "निश्चित आदमी, निश्चित समय पर कुछ निश्चित कार्य, मिल-जुल कर करने के लिए पैदा होते हैं। अजीतसिंह और मैं - दो आत्माएँ हैं - पैदा हुए हैं एक-दूसरे को मदद देने के लिए, मानव जाति की भलाई के महान कार्य हेतु। मैं उसको मात्र प्यार कर सकता था। वह भी प्यार करने से बाज नहीं आ सकता था। यह सम्बन्ध पिछले जन्म का है। हम एक-दूसरे के पूरक-प्रपूरक हैं।" अपनी युग्लात्मा के भौतिक राज्य में स्वामी विवेकानन्द तीन बार गए थे। उनकी तीन खेतड़ी यात्राओं को - सान्निध्य; आशिष तथा अभिनन्दन - संज्ञा दी जा सकती है ।

स्वामी विवेकानन्द और राजा अजीतसिंह परस्पर जून 4, 1891 को आबू पर्वत पर मिले थे। यह प्रथम भेंट मुंशी जगमोहन लाल (खेतड़ी राज्य के प्राइवेट-सेक्रेटरी) द्वारा प्रस्तावित हुई और प्रथम परिचय ही प्रेम-बंधन बन गया। तत्पश्चात् वे दोनों पहली बार अक्टूबर 4, 1891 तक साथ-साथ रहे थे। अगस्त 7, 1891 को सुबह 7.30 बजे स्वामीजी राजा अजीतसिंह के साथ खेतड़ी पहुँचे - यह उनकी प्रथम खेतड़ी यात्रा थी - जिसकी अज्ञेय-प्रेरणा का उद्देश्य यमल-आत्मा स्थापन था। स्वामी विवेकानन्द दूसरी बार अप्रेल 21, 1893 को राजकुमार जयसिंह के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिए मद्रास से खेतड़ी मुंशी जगमोहनलाल द्वारा लाए गये थे, जिसमें नियति का प्रच्छन्न उद्देश्य उनकी अमेरिका यात्रा की दुर्लभ व्यवस्था का संपूर्ण श्रेय राजा अजीतसिंह को दिलवाना था।

Dashrath Singh Shekhawat

स्वामी विवेकानन्द अपनी विश्व-ख्याति के प्रमुख सहयोगी राजा अजीतसिंह के हर्षोल्लास में सम्मिलित होने के लिए दिसम्बर 12, 1897 को तीसरी बार खेतड़ी पहुँचे थे और उसी दिन सायं खेतड़ी हाई स्कूल में आयोजित एक विशाल स्वागत-समारोह में उपस्थित हुए थे। राजा अजीतसिंह का महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती में सम्मिलित होकर लौटना और स्वामीजी का विश्वविख्यात होकर अमेरिका से लौटना - इन दो संयोगों के गरिमामय हर्षोल्लास के मध्य मरुस्थल में आध्यात्मिक प्रेरणा की धारा बहाना मानो उनकी तीसरी खेतड़ी यात्रा का नैसर्गिक विधान था ।

मात्र लोक-कल्याण कामना को ही अपना जीवन-व्रत निर्धारित कर संपूर्ण देश की प्रथम-दृष्टया जानकारी पाने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने सर्वप्रथम अपने गुरुभाईयों की मोह-माया का बंधन काटा और एकांकी भ्रमण करने का निश्चय लेकर सन् 1891 के जनवरी माह में वे दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गये। फरवरी में वे रेलमार्ग से अलवर पहुँचे, जहाँ वे मार्च 28 तक रहे; तत्पश्चात् जयपुर, अजमेर, पुष्कर होते हुए अप्रेल 14, 1891 को माउन्ट आबू पहुँचे थे। माउन्ट आबू में स्वामीजी का परिचय किशनगढ़ राज्य के एक वकील मु. फैजअली से हुआ। मु. फैजअली आत्मिक-आग्रह से स्वामीजी को अपने साथ रहने के लिए किशनगढ़ कोठी ले गये। यहीं जून 2 को दोपहर-विश्राम के बाद सहसा उनकी भेंट खेतड़ी नरेश के प्राइवेट-सेक्रेटरी मुन्शी जगमोहनलाल से हुई ।

मुन्शी जी अपने मुसलमान मित्र के घर पर हिन्दू संन्यासी को ठहरा हुआ पाकर अपने आपको रोक न सके और प्रश्न कर बैठे, "स्वामीजी आप हिन्दू संन्यासी होकर एक मुसलमान के घर पर हैं;

आपके भोजन आदि को यह मुसलमान छू सकते हैं।" मुन्शी जगमोहनलाल के इस प्रश्न से उत्तेजित होकर स्वामीजी तपाक् से बोले, "महाशय आपके ऐसा कहने का मतलब क्या है ? मैं संन्यासी हूँ, मैं सभी सामाजिक आचार-व्यवहार से परे हूँ। मैं एक मेहतर के साथ भी बैठकर भोजन करता हूँ। यह तो ईश्वर का निर्देश है, अत: मैं निर्भय हूँ। शास्त्र का मुझे डर नहीं है, क्योंकि शास्त्र तो इसका समर्थन करते हैं। परन्तु हाँ, मुझे भय है आप जैसे कुछ अंग्रेजी जानने वालों से। आप लोग शास्त्र अथवा भगवान की परवाह नहीं करते, मैं सर्वभूतों में ब्रह्म का ज्ञान रखता हूँ। फिर मेरे लिए ऊंच-नीच या स्पृश्य-अस्पृश्य क्या है ? शिव !... शिव !!...शिव !!!..."

स्वामीजी के इस अल्प सान्निध्य ने मुन्शी जगमोहनलाल के हृदय में उनकी भेंट अपने पारखी राजा साहब खेतड़ी से कराने की भावना जागृत कर दी। इनके आग्रह से जून 4, 1891 को स्वामीजी की प्रथम भेंट राजा अजीतसिंह से आबू पर्वत पर हुई और वे मन ही मन स्वामीजी के गुरुत्वाकर्षण में आकर्षित हो गये। राजा साहब ने स्वामीजी से खेतड़ी चलने का अनुरोध किया जिसे स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया। स्वामीजी की यह यात्रा जुलाई 14, 1891 को आबू पर्वत से प्रारम्भ हुई और जयपुर, कोट होते हुए अगस्त 7 को प्रात: 7.30 बजे खेतड़ी समाप्त हुई। स्वामीजी लगभग पाँच माह खेतड़ी रहे और यह स्वामीजी की प्रथम खेतड़ी यात्रा थी ।

राजा अजीतसिंह एवं स्वामी विवेकानन्द के प्रथम सान्निध्य काल की कुछ चिरस्मर्णीय चर्चाओं के प्रसंग जो प्रकाश में आए हैं,

Dashrath Singh Shekhawat

अत्यन्त रोचक हैं, वे निम्नलिखित हैं :

राजा अजीतसिंह : स्वामीजी जीवन क्या है ?

स्वामी विवेकानन्द : एक अन्तर्निहित शक्ति मानो लगातार अपने स्वरूप में व्यक्त होने के लिए अविराम चेष्टा कर रही है और बाह्य प्रकृति उसे दबा रही है। इसी चेष्टा का नाम जीवन है ।

राजा अजीतसिंह : महाराज शिक्षा क्या है ?

स्वामी विवेकानन्द : विचारों का स्नायु से घनिष्ट सम्बन्ध करने का नाम शिक्षा है। जब तक कोई भाव मन में दृढ़ संस्कार के रूप में स्थापित न हो जाए तब तक वह भाव वास्तव में मन की सम्पत्ति नहीं कहा जा सकता ।

अन्यत्र : मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभावसिद्ध है; कहीं बाहर से नहीं आता सब अंदर ही है। वास्तव में विश्व का असीम ज्ञान भंडार स्वयं तुम्हारे मन में है। बाहरी संसार तो एक सुझाव, एक प्रेरक मात्र है, जो तुम्हे अपने ही मन का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है। ....शिक्षा से आत्मविश्वास आता है, आत्मविश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्म भाव जाग उठता है ।

राजा अजीतसिंह : स्वामीजी विधान या नियम क्या है ?

स्वामी विवेकानन्द : मन जिस प्रणाली से कतिपय वस्तुओं को धारण करता है वही विधान है, वही नियम है। बाह्य जगत में नियम की कोई सत्ता नहीं है। घटनाओं का ज्ञान हम लोगों के मन

में जिस प्रकार होता है, उसी ज्ञान को नियम कहते हैं। मन अपने संस्कारों को विभिन्न किन्तु सजातीय श्रेणी में विभाजित करता है। प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत विषयों के साधारण लक्षण एक-एक नियम के आकार में प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार बाह्य वस्तु के संस्कारों पर बुद्धि की प्रतिक्रिया से प्रत्येक नियम की उत्पत्ति होती है ।

राजा अजीतसिंह : स्वामीजी सत्य क्या है ?

स्वामी विवेकानन्द : पूर्ण सत्य एक और अद्वितीय है। परन्तु साधारणत: जिसको हम लोग सत्य समझते हैं, वह आपेक्षिक-रूप से सत्य है। ज्यों-ज्यों मनुष्य में ज्ञान की वृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों वह एक सत्य को छोड़कर दूसरे सत्य को ग्रहण करता जाता है। मनुष्य जिसको त्याग देता है वह मिथ्या नहीं है, किन्तु जिसको ग्रहण करता है वह और श्रेष्ठतर सत्य है। इस अवस्था में चरम सत्य की प्राप्ति नहीं होती। चरम सत्य की प्राप्ति हो जाने पर आपेक्षिक सत्य-ज्ञान लोप हो जाता है ।

एक दिन दरबारियों से घिरे बैठे महाराजा अजीतसिंह ने आग्रहपूर्वक स्वामीजी को बुलवाया और गहन विचार विमर्श किया, तत्पश्चात् नर्तकी को इशारा किया। स्वामीजी उठ कर जाने लगे, नरेश ने रुकने का आग्रह किया, "स्वामीजी आप रुकिये, उच्च स्तर का भक्ति संगीत सुनकर आप अवश्य ही आनन्दित होंगे।" स्वामीजी पुन: बैठ गये। संगीत की स्वरलहरी पर नर्तकी ने अपने हृदय की वेदना उंडेलते हुए विनती भरे स्वर भक्त शिरोमणि सूरदास की इन पंक्तियों में प्रवाहित किए :

Dashrath Singh Shekhawat

प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो ।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ।
एक लोहा पूजा में राखत एक घर बधिक परो ।
पारस गुण अवगुण नहिं चितवत कंचन करत खरो ।

प्रभु मेरे अवगुण चित न धरो ।

मधुर संगीत ने स्वामीजी को भाव राज्य में प्रतिष्ठित कर दिया; उनके मुख से निकला - "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" - एक नर्तकी से उन्हें आध्यात्मिक-शक्ति-दर्शन हुआ और वे कह उठे, "माँ, मैंने आज अपराध किया है, आपकी अवहेलना कर उठकर जा रहा था, आपके गीत से मुझे चैतन्य हुआ है ।"

स्वामीजी परिव्राजक काल में अज्ञेयता बनाए रखने के लिये विभिन्न नामों से भ्रमण करते रहे थे। उनका विवेकानन्द नाम राजस्थान की देन है। इससे पहले स्वामीजी अपना परिचय "विविदिशानन्द" नाम से दिया करते थे। इस लुप्त सत्य का विवेचन पं. झाबरमल्ल शर्मा द्वारा लिखित पुस्तक "खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द" में मिलता है। वे लिखते हैं, "यह बात शायद बहुत कम लोग जानते होंगे कि स्वामीजी का सर्वजन विदित विवेकानन्द नाम रखने वाले राजाजी बहादुर ही थे। स्वामीजी अपना नाम विविदिशानन्द लिखते थे। यह बात उनके पुराने पत्रों से भी प्रमाणित है। खेतड़ी के प्रथम प्रवास काल में एक दिन स्वामीजी के साथ राजाजी बैठे हुए थे। उन्होंने हँसते-हँसते कहा, 'महाराज आपका नाम बड़ा कठिन है। बिना टीकाकार की सहायता से साधारण लोगों की समझ में उसका मतलब नहीं आ सकता।

उच्चारण करना भी सहज नहीं है। इसके अतिरिक्त अब तो आपका विविदिशा काल भी समाप्त हो चुका है।' स्वामीजी ने राजाजी के युक्तियुक्त परामर्श को सुनकर कहा, 'आप किस नाम को पसन्द करते हैं ?' राजाजी ने कहा, 'मेरी समझ में आपके योग्य नाम है, "विवेकानन्द"। स्वामीजी ने परमानुरक्त राजाजी की इच्छा के अनुसार उस दिन से अपना नाम "विवेकानन्द" रख लिया।"

खेतड़ी राज्य सभा में पंड़ित नारायणदास विद्वान् थे। उन्होंने पातंजलि महाभाष्य का अध्यापन समाप्त करने के बाद स्वामीजी से कहा, "स्वामीजी मैं जो कुछ सिखा सकता था वह समाप्त हो गया। यदि मैं आपको स्वयं न देख लेता तो शायद मुझे यह विश्वास न होता कि आप जैसी प्रतिभा मनुष्य में संभव है।" स्वामीजी अपने इन अध्यापक के प्रति सदा ही श्रद्धा रखते रहे थे।

एक दिन स्वामीजी को एक गूढ़ पुस्तक के एक-एक पृष्ठ को दस-बारह सेकन्ड में पढ़ते-उलटते देखकर राजा अजीतसिंह अचम्भित हुए और उत्सुकता से पूछ बैठे, "स्वामीजी आप इतनी जल्दी पृष्ठ उलट कैसे देते हैं, क्या इतनी देर में समूचा पृष्ठ पढ़ लेते हैं।" स्वामीजी ने कहा, "राजन् आपने देखा होगा कि बालक पहले एक-एक अक्षर को ध्यान से देखकर उच्चारण करता है फिर वह मनो अक्षरों को जोड़-जोड़ कर शब्द उच्चारण करता है । तत्पश्चात् इन शब्दों का क्रमशः बार-बार उच्चारण करता हुआ पूरा वाक्य पढ़ता है। धीरे-धीरे अभ्यस्त होने पर उसकी दृष्टि पूरे वाक्य पर पड़ने लगती है और फिर वह उस वाक्य के भाव को ग्रहण करने लगता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य में भाव ग्रहण करने की शक्ति का विकास होता है वह पूरे अनुच्छेद के भाव को एक साथ ग्रहण करने

Dashrath Singh Shekhawat

लगता है और इसी प्रकार और विकास होने पर वह पूरे पृष्ठ को एक साथ पढ़ सकता है और उसका भाव ग्रहण कर सकता है। इसमें कोई विलक्षणता नहीं है केवल अभ्यास, ब्रह्मचर्य और एकाग्रता की संभाव्यता है। इन तीनों की सहायता से कोई भी ऐसा अभ्यास कर सकता है। यदि आप चाहें तो आप भी प्रयास करें, शीघ्र ही आपको भी जल्दी पढ़ने का अभ्यास हो जाएगा ।''

राजा अजीतसिंह और स्वामी विवेकानन्द का प्रथम सान्निध्य लगभग पाँच माह रहा। वे मात्र शास्त्र-चर्चा ही करते थे ऐसा नहीं बल्कि उनका समय अन्यान्य गतिविधियों में भी बीता था जिसमें उल्लेखनीय दृश्यावलोकन, घुड़सवारी, विभिन्न दार्शनिक एवं कला विषयों पर चर्चा, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, भौतिक-ज्योतिष में ज्ञानार्जन एवं प्रयोग तथा खगोलविद्या का व्यावहारिक ज्ञान एक शक्तिशाली दूरबीन से करना तथा संगीत का रसास्वादन करना। अन्तिम दोनों गतिविधियों के प्रति बेणीशंकर शर्मा लिखते हैं, ''कहा जाता है कि कभी-कभी शिक्षक एवं शिष्य खगोलीय विद्याध्ययन में इतने तल्लीन हो जाते थे कि वे कई रात दूरबीन पर जमें रहते थे और राजस्थान के रहस्यपूर्ण अंधकार में स्वच्छ आकाश का सूक्ष्मपरीक्षण किया करते थे । ...यह एक सर्वविदित तथ्य है कि स्वामीजी एक अच्छे गायक थे एवं महाराजा अपने समय के राजपूताना में वीणा-वाद थे । अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि ये दोनों आत्माएँ संगीत के आधार पर भी एक-दूसरे से भेंट करती थीं। जब स्वामीजी गाते थे, तब महाराजा वीणा अथवा हारमोनियम पर संगत करते थे, यह भूलकर कि वे राजा हैं। लोगों ने उन दोनों में राज-योग एवं भक्ति-योग दोनों का समन्वय पाया ।

प्राय: महाराजा स्वामीजी के साथ भोजन करते थे और घन्टों उनके साथ रहते थे ।''

एक दिन स्वामीजी की कौपीन को राजभवन में सूखते देखकर राजपुरोहितजी से रहा न गया और वे कहने लगे, ''राजन् मेरी बात मानें तो संन्यासी को रात-दिन राजभवन में रखना उचित नहीं है। कहते हैं जहाँ संन्यासी की कौपीन सूखती है वहाँ राज्यलक्ष्मी निवास नहीं करतीं और वह राजभवन मठ बन जाता है।'' राजा अजीतसिंह ने सहज भाव से कहा, ''मुझे राज्यलक्ष्मी से कहीं अधिक यह कौपीन सुहाती है। इस राजभवन को मठ देखना चाहता हूँ।'' कालान्तर में राजा अजीतसिंह के उस वचन ने मूर्तरूप लिया और वह भवन आखिरकार ''विवेकानन्द-स्मृति-मंदिर'' कहलाने लगा ।

❐

स्वामी विवेकानन्द की दूसरी खेतड़ी यात्रा मूलत: नवजात शिशु राजकुमार जयसिंह को आशीर्वाद देने हेतु जन्मोत्सव समारोह में सम्मिलित होना था, किन्तु नियति का प्रच्छन्न उद्देश्य कुछ और ही था। फरवरी 21, 1893 के आलासिंगा पेरुमल को लिखे गये पत्र में विदेश यात्रा के लिए आवश्यक साधन न जुड़ पाने से उनकी व्यथा का आभास मिलता है। इन्हीं दिनों स्वामी विवेकानन्द को ले आने के लिए मु. जगमोहनलाल को अविलम्ब मद्रास भेजा गया था। स्वामीजी अमेरिका जाने के लिए वित्त-नियोजन में व्यस्त थे अत: उन्होंने खेतड़ी जाने में असमर्थता प्रकट की । किन्तु मु. जगमोहनलाल ने एक न सुनी और आग्रहपूर्ण अनुरोध किया,

Dashrath Singh Shekhawat

"अधिक नहीं तो मात्र एक दिन के लिए राजकुमार को आशीर्वाद देने चलना ही होगा; अन्यथा राजा अजीतसिंह को दारुण व्यथा होगी, उनकी यह मान्यता है कि आप ही की मंगलकामना से उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।" तथा मुन्शीजी ने यह आश्वासन भी दिया कि विदेश यात्रा की संपूर्ण व्यवस्था राजा अजीतसिंह स्वयं कर देंगे, और अंततोगत्वा वह सब जो भविष्य के गर्भ में छिपा था उजागर हुआ। स्वामीजी बीस दिन खेतड़ी रहे (अप्रेल 21, 1893 से मई 10, 1893 तक) तत्पश्चात मु. जगमोहनलाल के साथ बम्बई आए जहाँ उनका "शाही-लिबास" बढ़िया रेशम के गेरुआ रंग का अलखला और उसी रेशम का गेरुआ साफा उनके लिए बनवाया गया, अन्य आवश्यक सामग्री एकत्रित की गई और मई 31, 1893 को बम्बई बंदरगाह से रवाना होने वाले "पेनिन्सुला" जहाज की प्रथम श्रेणी का एक टिकट खरीदा गया। स्वामीजी की संकोच अभिव्यक्ति का प्रतिवाद करते हुए मु. जगमोहनलाल ने कहा, "आप सनातन धर्म के प्रतिनिधि और खेतड़ी नरेश के गुरुदेव, सर्वधर्म परिषद् में जा रहे हैं, इसकी शोभा होगी।"

❐

शिकागो में आयोजित सर्वधर्म-महासभा में सनातन धर्म के प्रतिनिधित्व ने स्वामी विवेकानन्द को सितम्बर 11, 1893 को ही विश्वविख्यात बना दिया। इसके बाद पुनः भारत लौटने पर उन्हें राष्ट्रव्यापी सम्मान मिला। मद्रास के विक्टोरिया हॉल में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ जिसमें अप्रत्याशित भीड़ एकत्रित हो गई। जनानुरोध से बाध्य होकर स्वामीजी को खुले मैदान में आना पड़ा

और वहाँ एक गाड़ी पर चढ़कर उन्होंने सभा को सम्बोधित किया। इस प्रसंग के संदर्भ में स्वामी निखिलानन्द लिखते हैं, "ऐसा लग रहा था मानो स्वयं श्रीकृष्ण ही रथ में खड़े होकर अर्जुन को अपनी कायरता त्यागने तथा अपनी आर्य विरासत के अनुरूप आचरण करने का आह्वान कर रहे हों।" स्वामीजी ने कहा, "मेरा कथन यही रहा है कि प्रत्येक राष्ट्र का एक ध्येय उसके लिए संजीवनी स्वरूप होता है, प्रत्येक राष्ट्र का एक निर्धारित मार्ग होता है, और भारत का विशेषत्व है धर्म।" इस सभा में राजा अजीतसिंह द्वारा भेजा गया सम्मान पत्र मु. जगमोहनलाल द्वारा पढ़ा गया, "...हमारा यह पवित्र आर्यवर्त देश इस बात में विशेष भाग्यशाली है कि शिकागो के धर्म-परिषद् में प्रतिनिधि के रूप में जाने के लिए उसे आप जैसा एक महापुरुष मिल सका और स्वामीजी यह केवल आपकी विद्वता तथा अदम्य उत्साह का फल है कि आज पाश्चात्य देश वाले भी यह बात भली-भांति जान गये कि आज भी भारत के पास आध्यात्मिकता की कैसी असीम निधि है।" इसके पहले भी राजा अजीतसिंह ने अपने मार्च 4, 1895 के अभिनन्दन पत्र में लिखा था, "हिन्दू धर्म के साधारण सिद्धान्तों का अंग्रेजी भाषा में जिस खूबी से आपने वर्णन किया है मैं नहीं समझ सकता कि उससे बढ़कर स्पष्टता से कोई भी व्यक्ति भाषा के स्वाभाविक अभावों एवं बन्धनों के कारण प्रकट कर सकता है।" मु. जगमोहनलाल ने यहीं राजा अजीतसिंह की ओर से खेतड़ी पधारने का निमंत्रण दिया तत्पश्चात् राजा अजीतसिंह ने स्वयं कलकत्ता जाकर स्वामीजी से खेतड़ी आने का सादर अनुरोध किया था। नरेश के सप्रेम अनुरोध को सम्मानित करने एक शताब्दी पूर्व तीसरी बार दिसम्बर 12,

Dashrath Singh Shekhawat

1897 को स्वामीजी खेतड़ी आये थे। राजा अजीतसिंह ने खेतड़ी से 25 कि.मी. दूर बबाई आकर स्वामीजी की अगवानी की और छह घोड़ों की बग्घी में, अपने निजी स्थान पर स्वामीजी को बैठाकर, अभिनन्दन-उत्साह भरे मार्ग से खेतड़ी लेकर आये थे ।

खेतड़ी प्रजा का उल्लास दुगना हो गया - प्रथम तो उनके नरेश रानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती में सम्मानित होकर निर्विघ्न विलायत यात्रा से लौटे थे और दूसरे उनके राजा के आध्यात्म गुरु स्वामी विवेकानन्द विश्वविख्यात होकर अमेरिका से भारत लौट आये थे। संपूर्ण भारतवर्ष जगह-जगह पर उनका अभिनन्दन कर रहा था। खेतड़ी में भी स्वामीजी का अभिनन्दन हुआ। इस उत्सव काल के कुछ उल्लेखनीय प्रसंग निम्नलिखित हैं :

खेतड़ी की प्रजा ने महती सभाओं में परम्परागत रीति-रिवाजों से स्वामी विवेकानन्द एवम् राजा अजीतसिंह का अभिनन्दन किया। इस अवसर पर राजा अजीतसिंह ने कहा था, "हिन्दू धर्म के विशेष सिद्धान्त विभिन्न धर्मों में बंधुत्व तथा सामंजस्य का पाठ आपने विश्व को पढ़ाया। आज का समारोह आपके सत्कार्य की सुकीर्ति की यशोगाथा गाने के लिए आयोजित किया गया है । इसे आप कृपापूर्वक स्वीकार करेंगे, इसी आशा के साथ ।"

स्वामीजी के अभिनन्दनों में उनके प्रति मुन्शी जगमोहनलाल के उद्गार थे, "हिन्दू धर्म के सनातन सिद्धान्तों का प्रतिपादन आपने जिस स्पष्टता, शुद्धता और प्रमाणिकता से किया...आपने वेदान्त के प्राचीन सिद्धान्तों को जैसा प्रतिपादित किया वैसा अन्य किसी ने नहीं किया..."

स्वामी विवेकानन्द ने आभार अभिव्यक्ति में कहा था, "भारतवर्ष की उन्नति के लिए जो थोड़ा बहुत मैंने किया है, वह कभी न होता, यदि राजाजी मुझे न मिलते।"

उपस्थित नवयुवकों को पाश्चात्य आदर्श के मोह को त्याग प्राच्य आदर्श में निष्ठा रखने का आह्वान करते हुए उन्होंने आगे कहा, "पाश्चात्य आदर्श है भोग और प्राच्य आदर्श है त्याग। देश में हर बड़े काम त्याग और तपस्या से ही होंगे।"

स्वामीजी अध्यापकों को सम्बोधित करते हुए बोले, "शिक्षा का अर्थ है अपने हृदय में पहले से वर्तमान ईश्वरत्व को प्रकाशित करना।...प्रत्येक बालक अनन्त ईश्वरीय शक्ति का आधार है, इस बात पर दृढ़ विश्वास स्थापित करना होगा। अध्यापकों को समझना होगा कि इन बालकों के हृदय में जो ईश्वरत्व सुप्तावस्था में विद्यमान है उसे जागृत करने का हमें प्रयत्न करना है। बालकों को शिक्षा देते समय हमें एक और बात का स्मरण रखना चाहिए और वह बात यह है कि बालक स्वयं कुछ सोचना सीखें, इसके लिए उन्हें उत्साहित करना चाहिए। इस मौलिक चिन्तन का अभाव ही भारत की वर्तमान दुरवस्था का कारण है। इस प्रकार यदि उन्हें शिक्षा दी जाए तो वे मनुष्य होंगे और अपने जीवन की अनेक कठिनाईयों को हल करने में स्वयं समर्थ होंगे ।"

प्रागैतिहासिक काल की दो महान् जातियों का उल्लेख करते हुए स्वामीजी ने कहा, "यूनानी लोग बाह्य प्रकृति की अनन्त एवं आर्य लोग आभ्यन्तरिक प्रकृति की अनन्त सम्बन्धी खोज में दत्तचित्त हुए। यूनानी लोग वृहत् ब्रह्माण्ड की खोज में व्यस्त हुए

Dashrath Singh Shekhawat

और आर्य लोग क्षुद्र ब्रह्माण्ड या शूक्ष्म जगत् के तत्वानुसंधान में मग्न हुए। संसार की सभ्यता में दोनों ही ने अपना निर्दिष्ट अंश-विशेष सम्पन्न किया है। हमें पाइथागोरस, सोक्रेटिस, ल्पेटो तथा मिश्र के नव्य ल्पेटोवादियों के विचारों में भारतीय विचारों की झलक दीख पड़ती है। शोपनहार, कांट तथा डॉयसन द्वारा भारत के वैदिक एवं उपनिषदिक चिन्तन का समावेश योरोप की सभ्यता पर पड़ना स्वीकार किया गया है ।''

आगे चलकर स्वामीजी ने कहा : मुझे एक बात बहुत सम्भव और स्पष्ट मालूम होती है और वह यह है कि यूनानियों की भांति आर्य लोग भी संसार की समस्या हल करने के लिए पहले बाह्य प्रकृति की ओर उन्मुख हुए - सुन्दर रमणीय बाह्य प्रकृति भी उन्हें प्रलोभित करके धीरे-धीरे बाह्य जगत् में ले गयी। किन्तु भारत की यही विशेषता है कि जिस वस्तु में कुछ उदात्तता नहीं होती उसका यहाँ कुछ मूल्य ही नहीं होता। मृत्यु के पश्चात् क्या होता है, इसकी यथार्थ तात्विक विवेचना साधारणत: यूनानियों के हृदय में उठी ही नहीं। किन्तु भारत में आरम्भ से ही यह प्रश्न बार-बार पूछा जा रहा है - ''मैं कौन हूँ ? मृत्यु के पश्चात् मेरी क्या अवस्था होगी ?'' यूनानियों के मत में मनुष्य मर कर स्वर्ग जाता है।...किन्तु हिन्दुओं का मन इतने से तृप्त नहीं हुआ। उनके विचार में स्वर्ग भी स्थूल जगत् के अन्तर्गत है। हिन्दुओं का मत है जो कुछ संयोगोत्पन्न है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। उन्होंने बाह्य प्रकृति से पूछा, ''आत्मा क्या है, इसे क्या तुम जानती हो ?'' उत्तर मिला ''नहीं''। प्रश्न हुआ, ''क्या कोई ईश्वर है ?'' प्रकृति ने उत्तर दिया, ''मैं नहीं जानती।'' तब वे प्रकृति से विमुख हो गये और वे

समझने लगे कि बाह्य प्रकृति कितनी ही महान् और भव्य क्यों न हो, वह देशकाल की सीमा से आबद्ध है। तब एक अन्य वाणी सुनाई देती है : नये उदात्त भावों की धारणा उनके मन में उदित होती है। यह वाणी थी ''नेति, नेति'' - ''यह नहीं, यह नहीं''। उस समय विभिन्न देवगण एक हो गये, सूर्य, चन्द्र, तारा इतना ही क्यों समग्र ब्रह्मांड एक हो गया - उस समय इस नूतन आदर्श पर उनके धर्म का आध्यात्मिक आधार प्रतिष्ठित हुआ।...उस सीमाबद्ध, अपरिपक्व व्यक्तिविशेष, सब के पाप पुण्यों का विचार करने वाले क्षुद्र ईश्वर की धारणा शेष नहीं रही, अब बाहर का अन्वेषण समाप्त हुआ, अपने भीतर अन्वेषण आरम्भ हुआ ।

इसके बाद स्वामीजी ने द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत मतों का वर्णन करते हुए अनेक सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करते हुए कहा, ''इनमें प्रत्येक मानों एक-एक सोपान है - एक सोपान पर चढ़ने के बाद परवर्ती सोपान पर चढ़ना होता है, सबके अन्त में अद्वैतवाद की स्वाभाविक परिणति है और अन्तिम है ''तत्त्वमसि''। अन्त में स्वामीजी ने समझाया ज्ञान का अर्थ बहुत्व में एकत्व की खोज करना है और किसी विज्ञान का चरम उत्कर्ष तब माना जाता है जब सारे अनेकत्व में एकत्व का अनुसंधान पूरा होता है। जब भौतिक विज्ञानी अथवा आध्यात्मिक विज्ञानी विभिन्नता की ओट में अवस्थित एकत्व का आविष्कार कर लेता है तब वह उच्चतम सीमा में पहुँच जाता है।

स्वामीजी ने वेदों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा : वेद किसी व्यक्ति विशेष का वाक्य नहीं है। पहले कतिपय विचारों का शनै: शनै: विकास हुआ । अंतत: उन्हें ग्रन्थ का रूप दिया गया

Dashrath Singh Shekhawat

और यह ग्रन्थ प्रमाण बन गया।...वैदिक ऋषिगण अपने सम्पूर्ण भाव भाषा में भले ही न प्रकट कर सके हों किन्तु वे संस्कृति और सहृदयता के आगार थे। ऋग्वेद का यह भाव कि ईश्वर साक्षात्कार के पश्चात् ही मनुष्य का यथार्थ जीवन आरम्भ होता है - इसकी जीवन्त खोज स्वामीजी ने स्वयं में और अपने गुरुदेव में निर्भयतापूर्वक की और गहन मंथन के पश्चात् ही रामकृष्ण मिशन को एक ठोस सिद्धान्त दिया "आत्मनो मोक्षार्थम् जगद्धिताय च"; पहले ईश्वर साक्षात्कार तत्पश्चात् लोक-हितैषिता।

स्वामीजी कहा करते थे, "पुरातन धर्म कहता है जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखता वह नास्तिक है, नूतन धर्म कहता है जो अपने आप में विश्वास नहीं करता वह नास्तिक है।" इसी दृढ़ आत्मविश्वास द्वारा मनुष्य जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान खोज सकता है जैसा कि लोकशिक्षा हेतु स्वामीजी द्वारा राजा अजीतसिंह के प्रति लिखी गयी कविता की इन पंक्तियों में मूर्त रूप हुआ :

मेघों से यदि सूर्य कभी क्षण भर छिप जावे,
गगन प्रान्त में पूर्ण अंधेरा यदि छा जावे ।
वीर हृदय ! दृढ़ बने रहो, मत विचलित होना,
निश्चय होगी विजय तुम्हारी धैर्य न खोना ॥

❐

Dashrath Singh Shekhawat